श्रीकन्हैयालाल लोढा, बी० ए०

जैनदर्शन और विज्ञान

वर्त्तमान युग विज्ञान का युग है. इसमें प्रत्येक सिद्धांत विज्ञान के प्रकाश में निरखा-परखा जाता है. विज्ञान की कसौटी पर खरा न उतरने पर उसे अंधविश्वास माना जाता है और उस पर विश्वास नहीं किया जाता है. आज अनेक प्राचीन धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त विज्ञान के समक्ष न टिक सकने से धराशायी हो रहे हैं. परन्तु जैनदर्शन इसका अपवाद है. वह विज्ञान के प्रकाश से शुद्ध स्वर्ण के समान अधिक चमक उठा है.

विज्ञान के विकास के पूर्व जैनदर्शन के जिन सिद्धांतों को अन्य दर्शनकार कपोल-कल्पित कहते थे वे ही आज विज्ञान-जगत् में सत्य प्रमाणित हो रहे हैं. जिस युग में प्रयोगशालाएँ तथा यान्त्रिक साधन न थे, उस युग में ऐसे सिद्धांतों का प्रतिपादन करना निश्चय ही उनके प्रणेताओं के अलौकिक ज्ञान का परिचायक है.

जैनदर्शन के सिद्धांतों से विश्वविख्यात साहित्यकार श्री जार्ज बर्नार्ड शा इतने अधिक प्रभावित थे कि महात्मा गांधी के पुत्र श्रीदेवदास गांधी ने जब उनसे पूछा कि आप से किसी धर्म को मानने के लिए कहा जाय तो आप किस धर्म को मानना पसंद करेंगे ? शा ने चट उत्तर दिया-- 'जैनधर्म'. इसी प्रकार प्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जैकोबी आदि ने जैनदर्शन के सिद्धांतों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है.

जैनदर्शन के उन कतिपय सिद्धांतों पर, जो पहले इतर दार्शनिकों के बुद्धिगम्य न थे और आज विज्ञान जिन्हें सत्य सिद्ध कर रहा है, प्रस्तुत निबन्ध में प्रकाश डाला जायेगा.

जीव तत्त्व

पृथ्वी, पानी, पावक, पवन और वनस्पति की सजीवता:—जैनदर्शन विश्व में मूलत: दो तत्त्व मानता है :–जीव[1] और अजीव. इनमें से जीव के मुख्यतः दो भेद माने गये हैं[2]--त्रस और स्थावर. वे जीव जो चलते फिरते हैं त्रस और जो स्थिर रहते हैं वे स्थावर कहे जाते हैं. केंचुआ, चिउंटी मक्खी, मच्छर, मनुष्य, पशु आदि त्रस जीवों को तो अति प्राचीन काल से ही प्रायः सभी दर्शन सजीव स्वीकार करते रहे हैं परन्तु स्थावर जीवों को एक मात्र जैनदर्शन ही सजीव मानता रहा है. स्थावर जीवों के भी पांच भेद हैं[3]-पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति.

कुछ समय पूर्व तक जैनदर्शन की स्थावर जीवों की मान्यता को अन्य दर्शनकार एक मनगढंत कल्पना मानते थे. परन्तु आज विज्ञान ने इस मान्यता को सत्य सिद्ध कर दिया है.

---

१. जीवा चेव अजीवा य एस लोए वियाहिए.—उत्तराध्ययन अ० ३६ गाथा २.
२. संसारिणस्त्रसस्थावराः—तत्त्वार्थसूत्र अ० २ सूत्र १२.
३. पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः —तत्त्वार्थसूत्र अ० २ सूत्र १३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री एच० टी० बर्सटापेन का कथन है कि जिस प्रकार बालक बढ़ता है वैसे ही पर्वत भी धीरे-धीरे बढ़ते हैं. आप विश्व के पर्वतों की वृद्धि का अंकन करते हुए लिखते हैं[1]—न्यूगिनी के पर्वतों ने अभी अपनी शैशवावस्था ही पार की है. सेलिबोस के दक्षिणी पूर्वी भागों, भोलूकास के कुछ टापुओं और इंडोनेशिया के द्वीप-समूह की भूमि भी ऊँची उठ रही है. श्री सुगाते का मत है कि न्यूजीलैण्ड के पश्चिमी नेलसन के पर्वत 'प्लाइस्टोसीन' युग के अंत में विकसित हुए हैं. श्री बेल्मेन के अनुसार आल्पस पर्वतमाला का पश्चिमी भाग अब भी बढ़ रहा है. द्वीपों की भूमि का उठाव तथा पर्वतों की वृद्धि पृथ्वी की सजीवता के स्पष्ट प्रमाण हैं.

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री कैप्टिन स्कवेसिवी ने यंत्र के द्वारा एक लघु जलकण में ३६४५० जीव गिनाये हैं. जिस प्रकार मनुष्य पशु आदि सजीव प्राणी श्वास द्वारा शुद्ध वायु से ओक्सीजन (oxygen) ग्रहण कर जीवित रहते हैं और ओक्सीजन या शुद्ध हवा के अभाव में मर जाते हैं, इसी प्रकार अग्नि भी वायु से ओक्सीजन लेकर जीवित रहती या जलती है और उसे किसी बरतन से ढंक देने या अन्य किसी प्रकार हवा न मिलने देने पर तत्काल बुझ जाती है. वैज्ञानिकों का कथन है कि सुई के अग्रभाग जितनी हवा में लाखों जीव रहते हैं जिन्हें 'थेक्सस' कहा जाता है.

वनस्पति भी सजीव है. विज्ञान-जगत् में यह बात सर्वप्रथम सर जगदीशचन्द्र वसु ने सिद्ध की. उन्होंने यंत्रों के माध्यम से प्रत्यक्ष दिखाया कि पेड़-पौधे आदि वनस्पतियां मनुष्य की भाँति ही अनुकूल परिस्थिति में सुखी और प्रतिकूल परिस्थति में दुःखी होती हैं. तथा हर्ष, शोक, रुदन आदि करती हैं. जैनागमों[2] में आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चारों संज्ञाओं को भी वनस्पति में स्वीकार किया गया है.

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि वनस्पतियाँ मिट्टी, जल, वायु तथा प्रकाश से आहार ग्रहण कर अपने तन को पुष्ट करती हैं. आहार के अभाव में वे जीवित नहीं रह सकतीं. वनस्पतियाँ भी पशु पक्षियों के समान निरामिष आहारी और सामिष आहारी दोनों प्रकार की होती हैं. आम, नीम, जामुन आदि निरामिष आहारी वनस्पतियाँ तो हमारी आँखों के सामने सदैव ही रहती हैं. सामिष आहारी वनस्पतियाँ अधिकतर विदेशों में पाई जाती हैं.

आस्ट्रेलिया में एक प्रकार की वनस्पति होती है जिसकी डालों में शेर के पंजों के समान बड़े-बड़े काँटे होते हैं. अगर कोई सवार घोड़े पर चढ़ा इस वृक्ष के नीचे से निकले तो वे घोड़े पर से उस व्यक्ति को इस प्रकार उठा लेती हैं, जैसे बाज किसी छोटी चिड़िया को. फिर वह शिकार उस वृक्ष का आहार बन जाता है. अमरीका के उत्तरी कैरोलीना राज्य में वीनस फ्लाइट्रेप पौधा पाया जाता है. ज्यों ही कोई कीड़ा या पतंगा इसके पत्ते पर बैठता है तो पत्ता तत्काल बंद हो जाता है. पौधा जब उसका रक्त-मांस सोख लेता है, तब पत्ता खुल जाता है और कीड़े का सूखा शरीर नीचे गिर जाता है. इसी प्रकार 'पीचर प्लांट' रेन हैटट्रम्पट, वटर-वार्ट, सनड्यू, उपस, टच-मी-नाट, आदि अनेक मांसाहारी वृक्ष हैं जो जीवित कीटों को पकड़ने व खाने की कला में प्रवीण हैं.

भय के लिए तो छुईमुई आदि वनस्पतियाँ प्रसिद्ध ही हैं, जो अंगुली दिखाने मात्र से भयभीत हो अपने शरीर को सिकोड़ लेती हैं. वनस्पति में मैथुन-क्रिया किस प्रकार संपन्न होती है तथा इस क्रिया के संपन्न न होने की स्थिति में फूल फल में परिणत नहीं होते हैं, आदि सब बातें श्री पी० लक्ष्मीकांत[3] ने सविस्तार दिखाई हैं. वनस्पतियाँ अपने और अपनी संतान के लिए आहार का संग्रह या परिग्रह भी करती हैं. वनस्पतिविशेषज्ञों का कथन है कि एक[4] भी फूलने वाला पौधा ऐसा नहीं है जो अपने बच्चे के लिए बीज रूप में पर्याप्त भोजनसामग्री इकट्ठी न कर लेता हो. ऐसे पौधे वसंत और गर्मी में खूब प्रयास करके सामग्री जमा कर लेते हैं. वनस्पति में निद्रा का वर्णन करते हुए हिरण्यमय बोस लिखते

---

१. नवनीत, सितम्बर १९६२.

२. चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ तंजहा-आहारसण्णा. भयसण्णा, मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा—ठाणांगसूत्र स्था० ४ उ० ४.

३. नवनीत, अगस्त १९५५ पृष्ठ २९ से ३२

४. देखिये नवनीत, अप्रैल १९५२ पृष्ठ २६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं—'जैसे जीवित (चलते-फिरते) प्राणी परिश्रम के बाद रात में सोकर थकावट दूर करते हैं वैसे ही पेड़-पौधे भी रात को सोते हैं. सूडान और वेस्ट इंडीज में एक ऐसा वृक्ष मिलता है जिसमें से दिन में विविध प्रकार की राग-रागिनियां निकलती हैं और रात में ऐसा रोना-धोना प्रारम्भ होता है मानों परिवार के सब सदस्य किसी की मृत्यु पर बैठे रो रहे हों या सिसक रहे हों. डा० जगदीशचन्द्र वसु ने तो वनस्पति की क्रोध, घृणा, प्रेम, आलिंगन आदि अनेक अन्य प्रवृत्तियों पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है. जैन ग्रंथों में वनस्पति की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष कही गई है. प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडमंड शुमांशा के कथनानुसार आज भी अमेरीका के केलीफोर्निया के नेशनल वन में ४६०० वर्ष की आयु के वृक्ष विद्यमान हैं.

आत्म-अस्तित्व और विज्ञान

आज के विज्ञान-जगत् में आत्म-अस्तित्व पर भी विश्वास प्रकट किया जाने लगा है. विश्व के महान् वैज्ञानिक अपनी शोध-खोज के आधार पर आत्म-अस्तित्व स्वीकार करने लगे हैं. यथा[१] :—

"वह युग निश्चय ही आयेगा, जब विज्ञान अज्ञात-अज्ञेय के सभी बन्द दरवाजे खोलने में समर्थ होगा. जितना हम पहले सोचते थे, ब्रह्माण्ड उससे भी अधिक आध्यात्मिक तत्त्वों पर टिका है. सच तो यह है कि हम ऐसे आध्यात्मिक जगत् में रहते हैं, जो भौतिक संसार से अधिक महान् और सशक्त है."—सर ओलिवर लॉज.

कोई अजानी शक्ति निरन्तर क्रियाशील है, परन्तु हमें उसकी क्रिया का कुछ पता नहीं......मैं मानता हूँ कि चेतना ही प्रमुख आधारभूत वस्तु है. पुराना नास्तिकवाद अब पूरी तरह मिट चुका है और धर्म, चेतना तथा मस्तिष्क के क्षेत्र का विषय बन गया है. इस नयी धार्मिक आस्था का टूटना संभव नहीं है."—सर ए० एस० एडिंग्टन.

"कुछ ही समय पहले तक यह बात वैज्ञानिक क्षेत्रों में एक हद तक फैशन बन गई थी कि अपने को नास्तिक (एग्नौस्टिक) कहा जाए, लेकिन अब अगर कोई आदमी अपनी नास्तिकता की नासमझी पर गर्व करता है, तो यह लज्जा और तिरस्कार की बात है. नास्तिकता का फैशन अब मिट चुका है. और, यह विज्ञान के श्रम का ही फल है."—साइन्स एंड रिलिजन.

"सच्चाई तो यह है कि जगत् का मौलिक रूप जड़ (Matter), बल (Force) अथवा भौतिक पदार्थ न होकर मन और चेतना ही है.—जे० बी० एस० हेल्डन.

अजीव तत्त्व

अब दूसरे तत्त्व 'अजीव' को लीजिए. जैनागमों में अजीव के पाँच भेद कहे हैं—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५) पुद्गल. ये पाँच द्रव्य तथा जीव कुल छः द्रव्य रूप यह लोक[२] कहा गया है. यहाँ न तो धर्म, शब्द कर्त्तव्य, गुण, स्वभाव व आत्म-शुद्धि के साधन का अभिव्यंजक है और न अधर्म शब्द दुष्कर्म या पाप का अभिव्यंजक. यहाँ ये दोनों ही जैन दर्शन के विशेष पारिभाषिक शब्द हैं और दो मौलिक द्रव्यों के सूचक हैं. जैनागमों में धर्म शब्द उस द्रव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है जो जीव और पुद्गल की गतिक्रिया में सहायक होता है और अधर्म उस द्रव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है जो जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक होता है. इसी प्रकार 'आकाश' और 'काल' को भी मौलिक द्रव्यों में स्थान दिया है.

धर्म और अधर्म—विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शोध 'ईथर' है. ईथर और जैनदर्शन में कथित धर्म द्रव्य के गुणों में

---

१. ज्ञानोदयः अक्टूबर १९५९

२. धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो.
एस लोगोत्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं । —उत्तराध्ययन अ० २८ गा ७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतना अधिक साम्य है कि ये दोनों एक द्रव्य के दो पृथक्-पृथक् नाम हैं, ऐसा कहना असमीचीन न होगा. ईथर के विषय में भौतिक विज्ञानवेत्ता डा० ए० एस० एडिंगटन लिखते हैं:—[१]

"आज कल यह स्वीकार कर लिया गया है कि ईथर भौतिक द्रव्य नहीं है. भौतिक की अपेक्षा उसकी प्रकृति भिन्न है—भूत में प्राप्त पिण्डत्व और घनत्व गुणों का ईथर में अभाव होगा परन्तु उसके अपने नये और निश्चयात्मक गुण होंगे—"ईथर का अभौतिक सागर."

अलबर्ट आईन्स्टीन के अपेक्षावाद के सिद्धांतानुसार ईथर अभौतिक (अपारमाणविक), लोकव्याप्त, नहीं देखा जा सकने वाला, अखंड द्रव्य है. प्रोफेसर जी० आर० जैन एम० एस-सी० धर्म द्रव्य और ईथर का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए लिखते हैं:—[२]

"यह सिद्ध हो गया है कि विज्ञान और जैन दर्शन दोनों यहाँ तक एकमत हैं कि धर्मद्रव्य या ईथर अभौतिक, अपारमाणविक, अविभाज्य, अखंड आकाश के समान व्यापक, अरूप, गति का अनिवार्य माध्यम और अपने आप में स्थिर है."

इसी प्रकार स्थिति में सहायक अधर्म द्रव्य (Medium of rest) के विषय में वैज्ञानिकों की खोज जारी है.

आकाश और काल

जैन दर्शन के समान ही विज्ञान-जगत् में आकाश और काल का भी द्रव्य के रूप में अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया है. विश्वविख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टीन का कथन है कि देश और काल स्वतंत्र पदार्थ हैं और ये भी घटनाओं में भाग लेते हैं. नयी भौतिकी संकेत देती है कि देश और काल के भीतर केवल द्रव्य और विकिरण ही नहीं बहुत सी और भी चीजें हैं जिनका महत्त्व है. डा० हेनशा का मत है—

These four elements (Space, Matter, Time and Medium of motion) are all seperate in our mind. We cannot imagine that the one of them could depend on another or converted into another.

अर्थात् 'आकाश, पुद्गल, काल और गति का माध्यम (धर्म) ये चारों तत्त्व हमारे मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न हैं. हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि ये एक दूसरे पर निर्भर रहते हों या एक दूसरे में परिवर्तित हो सकते हों'. इससे जैनदर्शन के इस सिद्धांत की पुष्टि होती है कि सभी द्रव्य स्वतंत्र परिणमन करते हैं और कोई किसी के अधीन नहीं है.

उत्तराध्ययन सूत्र अ०२८ गाथा ८ के अनुसार 'अणंताणि य दव्वाणि कालो पुग्गल जंतवो' अर्थात् काल द्रव्य अनन्त है. तथा अलोकाकाश में काल आदि द्रव्य नहीं है. जैनदर्शन की इन दोनों मान्यताओं की पुष्टि एडिंग्टन ने की है :—

The World is closed in space dimensions (लोकाकाश) but it opens at both ends its time dimensions. I shall use the phrase arrow to express this one way property which has no analogue in space.

---

१. Now a days it is agreed that ether is not a kind of matter, being non-material, its properties are quite unique, characters such as a mass and rigidity which we meet with in matter will naturally be absent in ether but that ether will have new definite characters of its own...............non material ocean of ether.

The Nature of the physical world P. **31.**

२. Thus it is proved that Science and Jain physics agree absolutely so far as they call Dharm (ether) non-material, non-atomic, non-discrete, continuous, co-extensive with space, in divisible and as a necessary medium for motion and one which does not it self move.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन लोक को परिमित मानता है और अलोक को अपरिमित. लोक को छः द्रव्य रूप मानता है और अलोक केवल एक आकाश द्रव्यमय है. प्रो० अलबर्ट आइंस्टीन ने भी लोक और अलोक की भेद-रेखा खींचते हुए जो व्यक्त किया है उससे जैन दर्शन की लोकविषयक उपर्युक्त मान्यता का पूर्ण समर्थन होता है. आइंस्टीन का कथन है :—"लोक परिमित है, अलोक अपरिमित. लोक के परिमित होने के कारण द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर नहीं जा सकती. लोक के बाहर उस शक्ति (द्रव्य) का अभाव है, जो गति में सहायक होती है." जैन दर्शन ने भी अलोक में द्रव्यों के अभाव का कारण गति में सहायक धर्मास्तिकाय के अभाव को ही बताया है. कितनी आश्चर्यजनक समानता है दोनों के सिद्धान्तों में !

पुद्गल-परमाणु

अजीव का पाँचवाँ भेद पुद्गल (Matter) है. विश्व के दृश्यमान संपूर्ण पदार्थ इसी के अंतर्गत आते हैं. पुद्गल वर्ण, गंध, रस व स्पर्श युक्त होता है. पुद्गल का सूक्ष्मतम अविभागी अंश 'परमाणु' कहा गया है. जैन दर्शन सोना, चांदी, शीसा, पारा, मिट्टी, लोहा, कोयला, पत्थर, भाप, गैस आदि सर्व पदार्थों को एक ही प्रकार के परमाणुओं से निर्मित मानता है. पदार्थों की भिन्नता का कारण केवल परमाणुओं के स्निग्धता और रूक्षता आदि गुणों के अंतर में निहित मानता है. उसके अनुसार परमाणु परमाणु के बीच कोई भेद नहीं है. कोई भी परमाणु कालांतर में किसी भी परमाणु रूप परिणमन कर सकता है. आधुनिक विज्ञान पहले इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता था तथा ९२ प्रकार के मौलिक परमाणु मानता था. परन्तु अणु की रचना के आविष्कार ने सिद्ध कर दिया कि सब पदार्थों की रचना एक ही प्रकार के परमाणुओं से हुई है और इनका अन्तर केवल उनके अंतर्हित धनाणु (Proton) और ऋणाणु (Electron) की संख्याभेद से है. यही नहीं, प्रयोगशाला में वैज्ञानिकों ने एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में परिवर्तित कर उक्त सिद्धान्त को व्यावहारिक सत्य प्रमाणित किया. वैज्ञानिक बैंजामिन ने पारे को सोने में बदल दिया. अनेक प्रयोगशालाओं में प्लेटिनम् को सोने में बदलने के प्रयोग सफल हो चुके हैं.

ठाणांग सूत्र, स्थानक २ उ० ३ में पुद्गल के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है—'दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तंजहा परमाणुपोग्गला चेव नोपरमाणुपोग्गला चेव, अर्थात् पुद्गल के दो भेद हैं (१) परमाणु—जिसका विभाग न हो तथा (२) स्कंध-बहुत से परमाणुओं का समुदाय. अभिप्राय यह है कि परमाणुओं से स्कन्ध और स्कन्धों के समुदाय से वस्तुनिर्माण होता है. परमाणुओं से स्कन्ध का निर्माण कैसे होता है, इस विषय में पन्नवणासूत्र के त्रयोदश परिणामपद में वर्णन आया है—'गोयमा ! दुविहे परिणामे पण्णत्ते तंजहा··············समणिद्धयाए बंधो न होई, समलुक्खयाए वि ण होई, वेमायणिद्धलुक्खत्तणेणं. णिद्धस्य णिद्धेण दुयाहिएणं, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं. णिद्धस्य लुक्खेण उवेइ बंधो, जघन्नवज्जो विसमो समो वा.' यहाँ आगम में अनेक परमाणुओं में निहित स्निग्धता और रूक्षता बतलाते हुए कहा है—'समान गुण वाले स्निग्ध और समान गुण वाले रूक्ष परमाणु बंध को प्राप्त नहीं होते. बंध स्निग्धता और रूक्षता की मात्रा में विषमता से होता है. दो गुण अधिक होने से स्निग्ध का स्निग्ध के साथ तथा रूक्ष का रूक्ष के साथ बंध हो जाता है. स्निग्ध का रूक्ष के साथ भी बंध हो जाता है. किन्तु जघन्य गुण वाले का विषम या सम किसी के साथ बंध नहीं होता. अर्थात् एक गुण स्निग्ध और एक गुण रूक्ष परमाणुओं में बंधन नहीं होता.

जैन दर्शनिकों ने जैसे स्निग्धता और रूक्षता को बंधन का कारण माना, वैज्ञानिकों ने भी पदार्थ के धनविद्युत् और ऋणविद्युत्, इन दो स्वभावों को बंधन का कारण माना. तथा जैसे जैन दर्शन परमाणु मात्र में स्निग्धता और रूक्षता मानता है, आधुनिक विज्ञान भी पदार्थ मात्र में धनविद्युत् तथा ऋणविद्युत् मानता है. तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र ३४ की सर्वार्थसिद्धि टीका में आकाश में चमकने वाली विद्युत् की उत्पत्ति का विवेचन करते हुए कहा है[1]—"स्निग्धरूक्षगुण-

---

१. डा० बी० एल० शील का कथन है कि जैन दार्शनिक इस बात से पूर्ण परिचित थे कि पोजेटिव और नेगेटिव विद्युत्कणों के मिलने से विद्युत् उत्पन्न होती है.

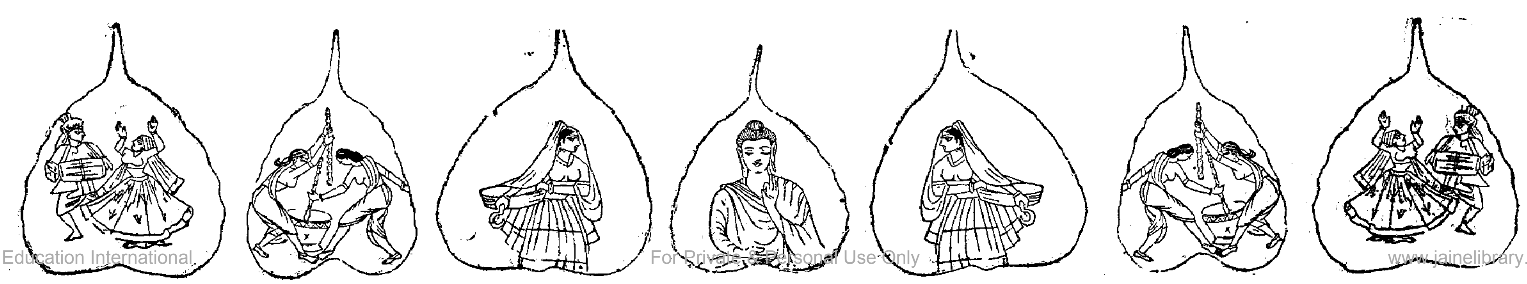

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निमित्तो विद्युत्" अर्थात् विद्युत् स्निग्ध रूक्ष गुणों के मिलन का परिणाम है. यों कहें कि स्निग्ध गुण से धन (Positive) विद्युत् और रूक्ष गुण से (Negative) विद्युत् उत्पन्न होती है. और इन दोनों की विद्यमानता प्रत्येक पदार्थ में अनिवार्य है. इस प्रकार आणविक बंधन के कारणभूत सिद्धान्त में जैन दर्शन और विज्ञान दोनों एक मत है. जैन दर्शन की भाषा में उसे स्निग्ध और रूक्ष गुणों का संयोग कहा है जब कि विज्ञान की भाषा धन और ऋण विद्युत् का संयोग कहती है. यही नहीं, विज्ञान ने जैन दर्शन के इस सिद्धान्त को—कि दो गुण से अधिक होने पर स्निग्ध का स्निग्ध के साथ और रूक्ष का रूक्ष के साथ बंध होता है—स्वीकार कर लिया है. विज्ञान ने भारी ऋणाणु (Heavy Electrons) को स्वीकार किया है, उसे नेगेट्रोन (Negatrons) कहा जाता है. यह साधारण ऋणाणु का ही समुदाय है, इस प्रकार यह ऋणाणु का ऋणाणु के साथ अर्थात् रूक्ष का रूक्ष के साथ बंधन है. इसी प्रकार प्रोटोन स्निग्ध का स्निग्ध के साथ तथा न्यूट्रोन स्निग्ध का रूक्ष के साथ बंधन का परिणाम है.

जैनदर्शन परमाणु को निरंतर गतिशील मानता है. विज्ञान भी कहता है कि प्रत्येक परमाणु में ऋणाणु (इलोक्ट्रोन) हैं और प्रत्येक इलोक्ट्रोन प्रति सेकिण्ड अपनी कक्षा पर १३०० मील की चाल से चक्कर काटता है. प्रकाश की गति प्रति सैकिण्ड १८६००० मील है. जैन शास्त्रों में पुद्गल का वर्णन करते हुए कहा है:—

सद्दन्धयार-उज्जोओ, पभा छायाऽऽतवे इ वा,
वण्णरसगंधफासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं । —उत्तराध्ययन सूत्र अ० २८ गा० १२.

अर्थात् शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप एवं वर्ण, गंध, रस स्पर्श ये पुद्गल हैं. इनमें से शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, और ताप को पौद्गलिक मानना जैन दर्शन की निजी विशेषता थी, जो अन्य दर्शनों से निराली ही थी. 'शब्द' ही को लीजिए। पहले यह आकाश का गुण माना जाता था. इस विषय में प्रो० ए० चक्रवर्ती का मत देखिए:—

The Jain account of sound is a physical concept. All other Indian systems spoke of sound as a quality of space. But jainism explains in relation with material particles as a result of concission of atmospheric molecules. To prove this the jain thinkers employed arguments which are now generally found in the text Book of physics.

यहाँ यह दिखलाया गया है कि अन्य सब भारतीय विचारधाराएँ शब्द को आकाश का गुण मानती रही हैं जब कि जैन-दर्शन उसे पुद्गल मानता है. जैन दर्शन की इस विलक्षण मान्यता को विज्ञान ने पुष्ट कर दिया है और अब वह पाठ्य-पुस्तकों पर भी उतर रही है.

आधुनिक वैज्ञानिक मानते हैं कि 'शब्द' शक्ति (energy) रूप है और यह प्रति घंटा ११०० मील की गति से आगे बढ़ता है. परन्तु विज्ञान के नये आविष्कारों ने शक्ति को पदार्थ का ही सूक्ष्म रूप स्वीकार कर लिया है. अतः शक्ति अब पदार्थ से भिन्न प्रकार की कोई वस्तु नहीं रह गई है. प्रोफेसर मैक्सबोर्न लिखते हैं–Energy and mass are just different names for the same thing—अर्थात् शक्ति और पदार्थ एक ही वस्तु के दो अलग-अलग नाम हैं. यही नहीं, आईंस्टीन के सापेक्षवाद के अनुसार शक्ति भार सहित प्रमाणित हो चुकी है, साथ ही पदार्थत्व (mass) वाली भी.

विज्ञान अंधकार, प्रकाश, छाया, ताप को शक्ति (energy) रूप मानता है और पहले कह आये हैं कि शक्ति पुद्गल का ही रूपान्तर मात्र है. अतः ये पुद्गल ही हैं. इस प्रकार जैनदर्शन के इनको पौद्गलिक मानने के सिद्धांत की पूर्ण पुष्टि हो जाती है. अंधकार, छाया और प्रकाश का विवेचन करते हुए लिखा है:—

अंधकार केवल प्रकाश तथा व्यक्तीकरण पट्टियों (Interferance bands) पर गणना यंत्र (counting machine) चलाया जाय तो काली पट्टी में से विद्युत् रीति से विद्युद्दण्ड निसृत होते हैं. इससे सिद्ध होता है कि काली पट्टी केवल प्रकाश का अभाव ही नहीं किन्तु शक्ति (energy) का रूपांतर भी है. अतः अंधकार और छाया उर्जा के भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपान्तर हैं[1] वैज्ञानिकों ने अब प्रकाश और ताप की मात्रा को भी नाप लिया है. उनका कहना है कि प्रकाश विद्युत् चुम्बकीय तत्व है और एक वर्ग मील क्षेत्र पर एक मिनिट में सूर्य से गिरने वाले प्रकाश की मात्रा का तौल ढाई तोला है. तथा तीन हजार टन पत्थर के कोयले जलाने से उत्पन्न ताप का वजन लगभग एक माशा के बराबर होता है.

जैन शास्त्रों में द्रव्य का लक्षण बताते हुए कहा—'सद् द्रव्यलक्षणम्. उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'. (तत्त्वार्थ सूत्र अ० ५ सूत्र २६-३०.) अर्थात् द्रव्य सत् है और सत् उसे कहते हैं जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य गुण युक्त हो. अर्थात् जैन-दर्शन यह मानता है कि वस्तु अपने अस्तित्व रूप में नित्य रहती है, उसका नाश कभी भी नहीं होता. उत्पत्ति और विनाश तो उसकी पर्यायें मात्र हैं. जैसे स्वर्ण के मुकुट को तोड़कर कुंडल बना देने पर भी स्वर्णत्व यथावत् बना रहता है. यह स्वर्णत्व ध्रौव्य है और मुकुट के आकार का नाश और कुंडल के आकार का निर्माण इसकी व्यय और उत्पाद पर्यायें अर्थात् रूपान्तर मात्र हैं. इसी प्रकार सब द्रव्य ध्रुव हैं, न तो शून्य से किसी द्रव्य का निर्माण ही संभव हैं और न कोई द्रव्य अपना अस्तित्व खोकर शून्य बनता है. इसी मत का समर्थन करते हुए वैज्ञानिक लेवाईजर (Lavoiser) लिखते हैं.- Nothing can be created in every process there is just as much substance (quality of matters) present before and after the process has taken place. There is only change of modification of matter (from law of indestructibility of matter as defind by Lavioser)

अर्थात् किसी भी क्रिया से कुछ भी नवीन उत्पत्ति नहीं की जा सकती और प्रत्येक क्रिया के पूर्व और पश्चात् की पदार्थ की मात्रा में कोई अंतर नहीं पड़ता है. क्रिया से केवल पदार्थ का रूप परिवर्तित होता है.

डेमोक्राइटस का अभिमत है—विज्ञान के 'शक्ति स्थिति' (censervation of Energy) ,वस्तु अविनाशित्व (law of Indestructibility) 'शक्ति की परिवर्तनशीलता' (Transformation of Energy) आदि सिद्धांत स्पष्ट प्रमाणित करते हैं कि नाशवान पदार्थ में भी ध्रुवत्व है. Nothing can never become some thing and some thing can become nothing अर्थात् कुछ नहीं से किसी पदार्थ की उत्पत्ति नहीं हो सकती और कोई पदार्थ अभाव को प्राप्त नहीं हो सकता.

जैन दर्शन के परमाणुसिद्धांत की सचाई से प्रभावित होकर Dr. G.S. Mallinathan लिखते हैं—A Student of Science, if reads the Jain treatment of matter will be surprised to find many corresponding ideas.

अर्थात् एक विज्ञान का विद्यार्थी जब जैनदर्शन का परमाणुसिद्धांत पढ़ता है तो विज्ञान और जैनदर्शन में आश्चर्यजनक समता पाता है. रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्य का कथन है कि आधुनिक विज्ञान के सर्वप्रथम जन्मदाता भगवान् महावीर थे.

लेश्या

जैन दर्शन 'मन' को आत्मा से भिन्न अनात्म,जड़, और एक विशेष प्रकार के पुद्गलों (मनोवर्गणा के द्रव्यों)से निर्मित पदार्थ मानता है तथा उसमें उन गुणों को स्वीकार करता है जो पुद्गल में विद्यमान हैं अर्थात् मन को भी पुद्गल की भांति वर्ण, आकार व शक्ति युक्त मानता है. आगमों में मन के विभिन्न स्तरों का वर्गीकरण लेश्याओं क रूप में किया गया है. लेश्याएँ ६ प्रकार की होती हैं:— (१) कृष्ण लेश्या (२) नील लेश्या (३) कापोत लेश्या (४) पीत(तैजस्) लेश्या (५) पद्म लेश्या (६) शुक्ल लेश्या. ये क्रमशः (१) अशुभतम भाव (२) अशुभतरभाव(३) अशुभभाव (४) शुभभाव (५) शुभतरभाव (६) शुभतम भाव की अभिव्यंजक हैं.

अत्यन्त महत्त्व की बात तो यह है कि लेश्याओं का नामकरण काले, नीले, कबूतरी, पीले, हल्का गुलाबी, शुभ्र आदि

१. नवनीत ५५ सितम्बर, पृष्ठ २८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रंगों के आधार का किया गया है. यह इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि किस प्रकार के विचारों से किस प्रकार की मनोवर्गणाएँ उत्पन्न होती हैं. अतीव हिंसा, क्रोध, क्रूरता आदि अशुभतम भाव कृष्णलेश्या के अन्तर्गत होते हैं. इन भावों से कृष्ण वर्ण की मनोवर्गणाएँ पैदा होती हैं और ये लेश्यावाले व्यक्ति के चारों ओर बादलों के समान फैल जाती हैं. इसी प्रकार अशुभतर, अशुभ, शुभ, शुभतर, शुभतम भावों से नीले, कबूतरी, पीले, हल्का गुलाबी, शुभ्र, वर्ण के मनोवर्गणाओं के मेघों के समुदाय में न केवल वर्ण ही होता है अपितु आकार एवं शक्ति भी होती है. विचारों में रंग, आकार, शक्ति होती है, इस तथ्य को पेरिस के प्रसिद्ध डाक्टर वेरडुक ने यंत्रों की सहायता से प्रत्यक्ष दिखाया है. उन्होंने विचारों से आकाश में जो चित्र बनते हैं उन चित्रों के एक विशेष यंत्र से फोटो भी लिए हैं. यथा:—

एक लड़की अपने पाले हुए पक्षी की मृत्यु पर विलाप कर रही थी. उस समय के विचारों की फोटो ली गई तो मृत पक्षी का फोटो पिंजड़े सहित प्लेट पर आ गया. एक स्त्री अपने शिशु के शोक में तल्लीन बैठी थी. उसके विचारों का फोटो लिया गया तो मृत बच्चे का चित्र प्लेट पर उतर आया. आदि आदि—

श्री वेरडुक का कथन है कि जैसा संकल्प होता है उसका वैसा ही आकार होता है और उसी के अनुसार उस आकृति का रंग भी होता है. आकाश में, संकल्प द्वारा नाना रूप बनते हैं. इन रूपों की बाह्य रेखा की स्पष्टता-अस्पष्टता संकल्पों की तीव्रता के तारतम्य पर निर्भर है. रंग विचारों का अनुसरण करते हैं; यथा-प्रेम एवं भक्ति युक्त विचार गुलाबी रंग, तर्क-वितर्क पीले रंग, स्वार्थ-परता हरे रंग तथा क्रोध लाल मिश्रित काले रंग के आकारों को पैदा करते हैं. अच्छे विचारों के रंग बहुत सुन्दर और प्रकाशमान होते हैं, उनसे रेडियम के समान ही सदैव तेज निकला करता है. (देखिये—"संकल्पसिद्धि" विचारों के रूप और रंग.)

जैन शास्त्रों में एक अन्य लेश्या का भी वर्णन मिलता है. उसे तेजोलेश्या कहा गया है. आगमों में इसकी प्राप्तिहेतु तपश्चर्या की एक विशेष विधि बतलाई गई है. तेजोलेश्या विद्युतीय शक्ति के समान गुण-धर्मवाली होती है. इसके[1] दो रूप हैं. एक उष्ण तेजोलेश्या, दूसरी शीतल तेजोलेश्या. अणु या विद्युत् शक्ति के समान यह भी दो प्रकार से प्रयोग में लाई जाती है. इसका एक प्रयोग संहारात्मक है और दूसरा प्रयोग संरक्षणात्मक. प्रथम प्रयोग में प्रयोक्ता अपने मनो-जगत् से उष्णता स्वभाव वाली उष्ण तेजोलेश्या की विद्युतीय शक्ति का प्रक्षेपण करता है जो विस्तार को प्राप्त हो अंग, बंग, मगध, मलय, मालव आदि सोलह देशों का संहार (भस्म) करने में समर्थ होती है.[2] दूसरे प्रयोग में प्रयोक्ता शीतल स्वभाववाली शीतल तेजोलेश्या की शक्ति का प्रयोग कर प्रक्षेपित उष्ण तेजोलेश्या के दाहक स्वभाव को शून्यवत् कर देता है.

उष्ण तेजोलेश्या का प्रयोग गोशालक ने भगवान् महावीर पर किया था. फलतः भ० महावीर के दो शिष्य भस्म हो गये और स्वयं सर्वसमर्थ भ० महावीर को भी अतिसार रोग हो गया जिससे भ० महावीर छः मास तक पीड़ित रहे. इस शक्ति के प्रयोग के विषय में श्रमण कालोदायी भ० महावीर से पूछता है और भगवान् सविस्तार उत्तर देते हैं:[3] अहो कालोदायि ! क्रुद्ध अनगार से तेजो लेश्या निकलकर दूर गई हुई दूर गिरती है, पास गई हुई पास में गिरती है. वह तेजोलेश्या जहाँ गिरती है, वहाँ उसके अचित्त पुद्गल प्रकाश करते यावत् तपते हैं. उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि तेजोलेश्या एक विद्युतीय शक्ति-सी है. इस विषय में विज्ञान की वर्त्तमान उपलब्धियों से आश्चर्य-जनक समानता मिलती है :—

---

१. भगवती-शतक १५

२. सोलसण्हं जणवयाणं तंजहा—अंगाणं, वंगाणं; मगहाणं, मलगाणं, मालवगाणं, अच्छाणं, वच्छाणं, कोच्छाणं, पाढाणं, लाढाणं वज्जीणं, मोलीणं, कासीणं, कोसलाणं, अबाहाणं, समुत्तराणं, घाताए, वहाए उच्छादणट्ठाए भासीकरणयाए.

—भगवती, शतक १५

३. कुद्धस्स अणगारस्स तेउलेस्सा निसट्ठासमाणी दूरं गंता दूरं निपतइ, देसं गंता देसं निपतई, तहिं तहिं जं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासेंति जाव पभासंति. भगवाती शतक ७ उ० १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"विचार[1] शक्ति की परीक्षा करने के लिए डाक्टर वेरडुक ने एक यंत्र तैयार किया है. एक कांच के पात्र में सुई के सदृश एक महीन तार लगाया है और मन को एकाग्र करके थोड़ी देर तक विचार-शक्ति का प्रभाव उस पर डालने से सुई हिलने लगती है. यदि इच्छा-शक्ति निर्बल हो तो उसमें कुछ भी हलचल नहीं होती. विचार-शक्ति की गति बिजली से भी तीव्र है. पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक एक सैकेंड के १६ वें भाग में १२००० मील तक विचार जा सकता है."

विचार के समय मस्तिष्क में विद्युत् उत्पन्न होती है और उसका असर भी मिकनातीसी सुई द्वारा नापा गया है. जिस प्रकार यंत्रों द्वारा विद्युत् तरंगों का प्रसारण और ग्रहण होता है और रेडियो, टेलीग्राम, टेलीफोन, टेलीप्रिंटर, टेलीवीजन आदि उस विद्युत् को मानव के लिए उपयोगी व लाभप्रद साधन बना देते हैं, इसी प्रकार विचार-विद्युत् की लहरों का भी एक विशेष प्रक्रिया से प्रसारण और ग्रहण होता है. इस प्रक्रिया को टेलीपैथी कहा जाता है. यह पहले लिखा जा चुका है कि टेलीपैथी के प्रयोग से हजारों मील दूरस्थ व्यक्ति भी विचारों का आदान-प्रदान व प्रेषण-ग्रहण कर सकते हैं. भविष्य में यही टेलीपैथी की प्रक्रिया सरल और सुगम हो जनसाधारण के लिए भी महान् लाभदायक सिद्ध होगी, ऐसी पूरी सम्भावना है.

आशय यह है कि अति प्राचीन काल ही से जैन जगत् के मनोविज्ञानवेत्ता मन के पुद्गलत्व, वर्ण, विद्युतीय शक्ति आदि गुणों से भलीभाँति परिचित थे. जब कि इस क्षेत्र में आधुनिक विज्ञानवेत्ता अभी तक भी उसके एक अंश का ही अन्वेषण कर पाये हैं.

ज्ञान

जैनशास्त्रों में ज्ञान का वर्णन करते हुए कहा है :—

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिणिबोहियं ।

ओहिनाणं तु तइयं मणनाणं च केवलं ॥—उत्तराध्ययन अ० २८ गाथा ४

अर्थात् ज्ञान पांच प्रकार का है—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल ज्ञान. इनमें से मति और श्रुत ज्ञान तो प्रायः सर्वमान्य हैं परन्तु शेष तीन ज्ञान के अस्तित्व पर अन्य दार्शनिक आपत्तियां उपस्थित करते रहे हैं. लेकिन आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषण ने इनको सत्य प्रमाणित कर दिया है. ज्ञान के स्वरूप का वर्णन करते हुए भगवती सूत्र श० १ उ० ३ में कहा है—अवधि ज्ञान से मर्यादा सहित सकल रूपी द्रव्य, मनःपर्यवज्ञान से दूरस्थ संज्ञी जीवों के मनोगत भाव तथा केवलज्ञान से तीन लोक युगपत् जाना जाता है. इसी विषय पर वैज्ञानिकों के विचार व निर्णय द्रष्टव्य हैं—डा० वगार्नर्डथिगा लिखते हैं:[2] "पीनियल आई" नामक ग्रन्थि का अस्तित्व मानव मस्तिष्क के पिछले भाग में है. ग्रंथि हमारे मस्तिष्क का अत्यंत सबल रेडियो तन्त्र है जो दूसरों की आंतरिक ध्वनि, विचार और चित्र ग्रहण करती है. इसका विकास होने पर व्यक्ति दुनिया भर के लोगों के मन के भेद जान सकने में समर्थ हो जायेगा. मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई दुराव न रह सकेगा. कोई किसी से कुछ छिपा कर न रख सकेगा." लेखक का यह भी कहना है कि यह शक्ति प्राचीन काल में विद्यमान थी, बाद में लुप्त हो गई. तथा डा० कर्वे का कथन[3] है—"पांच इन्द्रियों के अतिरिक्त एक छठी इन्द्रिय भी है जो अगम्य है, जिसे हम अतीन्द्रिय भी कह सकते हैं. मनुष्य प्रयत्न करे तो इस छठी इन्द्रिय का विकास हो सकता है. इस इन्द्रिय या शक्ति के कारण हम दूसरों के मन की बात जान सकते हैं. मन के विचार जानने के अतिरिक्त ऐसे लोग दूर घटी घटना की सूचना भी प्राप्त कर सकते हैं. कुछ वर्षों पूर्व ऐसी बातें करने वालों को

१. देखिये-संकल्प सिद्धि -अध्ययन-विचारशक्ति.
२. नवनीत अप्रैल ५३
३. नवनीत जुलाई ५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोग मूर्ख मानते थे लेकिन इधर सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ताओं ने काफी शोधकार्य के पश्चात् इस तथ्य में विश्वास करना आरम्भ कर दिया है. कुछ विद्वानों का विश्वास है कि प्राचीन काल में इस शक्ति का बहुत विकास हुआ था. इसी के समर्थन में एक अन्य वैज्ञानिक का मन्तव्य[1] है—"अनदेखी और अनजानी चीजों के बारे में सही-सही बता देने की ताकत को ही अंग्रेजी में 'सिक्स्थ सेंस' अर्थात् छठी सूझ कहते हैं. समय और दूरी की सीमा में ही नहीं बल्कि किसी दूसरे के मन और मस्तिष्क की अभेद्य सीमा के अन्दर भी आप इस सूझ के जरिये आसानी से प्रवेश पा सकते हैं. क्या यह सच है ? क्या सचमुच ही ऐसी ताकत किसी में हो सकती है ? बात कुछ असम्भव सी दीखती है. पर है यह सत्य. इससे इन्कार नहीं किया जा सकता".

दूरस्थ मानव के मन को विना किसी भौतिक माध्यम (रेडियो, तार, टेलीफोन आदि) के हजारों मील दूरस्थ व्यक्ति के साथ केवल मन के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान प्रेषण-ग्रहण करने की प्रक्रिया को टेलीपैथी कहते हैं. आज टेलीपैथी के विकास में अमेरीका और रूस में होड़ लगी है. कुछ समय पूर्व अमेरीका के प्रयोगकर्त्ताओं ने हजारों मील दूर सागर के गर्भ में चलने वाली पनडुब्बियों के चालकों को टेलीपैथी प्रक्रिया से संदेश भेजने में सफलता प्राप्त कर विश्व को चकित कर दिया है. अभिप्राय यह है कि दूरस्थ व्यक्ति के मन के भावों को जानना आज सिद्धांततः स्वीकार कर लिया गया है.

प्रसिद्ध वैज्ञानिक आईन्स्टीन का कथन है कि यदि प्रकाश की गति से अधिक (प्रकाश की गति एक सेंकिड में १८६००० मील है) गति की जा सके तो भूत और भविष्य की घटनाओं को भी देखा जा सकता है.

अभिप्राय यह है कि विज्ञान अवधि, मनःपर्यव व केवलज्ञान के अस्तित्व में विश्वास करने लगा है.

दर्शन

जैनागमों में 'तत्त्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्'[2] अर्थात् तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है. तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा स्याद्वाद के विना होना असंभव है. कारण कि स्याद्वाद ही एक ऐसी दार्शनिक प्रणाली है जो तत्त्व के यथार्थ स्वरूप का दिग्दर्शन करती है. प्रत्येक तत्त्व या पदार्थ अनंत गुणों का भंडार है. उन अनन्त गुणों में वे गुण भी सम्मिलित हैं जो परस्पर में विरोधी हैं फिर भी एक ही देश और काल में एक साथ पाये जाते हैं. इन विरोधी तथा भिन्न गुणों को विचार-जगत् में परस्पर न टकराने देकर उनका समीचीन सामञ्जस्य या समन्वय कर देना ही स्याद्वाद, सापेक्षवाद या अनेकांतवाद है. अलवर्ट आइन्स्टीन के सापेक्षवाद (Theory of Relativity) के आविष्कार (जैनागमों की दृष्टि से आविष्कार नहीं) के पूर्व जैनदर्शन के इस सापेक्षवाद सिद्धांत को अन्य दर्शनकार अनिश्चयवाद, संशयवाद आदि कहकर मखौल किया करते थे. परन्तु आधुनिक भौतिक विज्ञान ने द्वन्द्वसमागम (दो विरोधों का समागम) सिद्धांत देकर दार्शनिक जगत् में क्रान्ति कर दी है.

भौतिक विज्ञान के सिद्धांतानुसार परमाणु मात्र आकर्षण गुणवाले धनाणु (Proton) और विकर्षण गुण वाले ऋणाणु (Electron) के संयोग का ही परिणाम है. अर्थात् धन और ऋण अथवा आकर्षण और विकर्षण इन दोनों विरोधों का समागम ही पदार्थरचना का कारण है. पहले कह आये हैं कि जैसे जैनदर्शन पदार्थ को नित्य (ध्रुव) और अनित्य (उत्पत्ति और विनाश युक्त) मानता है उसी प्रकार विज्ञान भी पदार्थ को नित्य (द्रव्य रूप से कभी नष्ट नहीं होने वाला) तथा अनित्य (रूपांतरित होने वाला) मानता है. इस प्रकार दो विरोधी गुणों को एक पदार्थ में एक ही देश और एक ही काल में युगपत् मानना दोनों ही क्षेत्रों में सापेक्षवाद की देन है.

---

१. नवनीत जुलाई ५२ पृष्ठ ४०
२. तत्त्वार्थसूत्र अ० १ सूत्र २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो रेलगाडियां एक ही दिशा में पास-पास ४० मील और ३० मील की गति से चल रही हैं—तो ३० मील की गति से चलने वाली गाड़ी की सवारियों को प्रतीत होगा कि उनकी गाड़ी स्थिर है और दूसरी गाड़ी ४०-३० = १० मील की गति से आगे बढ़ रही है, जब कि भूमि पर स्थित दर्शक व्यक्तियों की दृष्टि में गाडियां ४० मील और ३० मील की गति से चल रही हैं. इस प्रकार गाड़ियों का स्थिर होना व विभिन्न गतियों का होना सापेक्ष ही है.

जिस प्रकार स्याद्वाद में 'अस्ति' और 'नास्ति' की बात मिलती है उसी प्रकार 'है' और 'नहीं' की बात वैज्ञानिक क्षेत्र के सापेक्षवाद में भी मिलती है. पदार्थ के तोल को ही लीजिए. जिस पदार्थ को साधारणतः हम एक मन कहते हैं. सापेक्षवाद कहता है यह 'है' भी और 'नहीं' भी. कारण कि कमानीदार तुला से जिस पदार्थ का भार पृथ्वी के धरातल पर एक मन होगा वह ही पदार्थ, मात्रा में कोई परिवर्तन न होने पर भी पर्वत की चोटी पर तोलने पर एक मन से कम भार का होगा. पर्वत की चोटी जितनी अधिक ऊँची होगी भार उतना ही कम होगा. अधिक ऊँचाई के कारण ही उपग्रह में स्थित व्यक्ति, जो पृथ्वी के धरातल पर डेढ़-दो मन वजन वाला होता है, वहाँ वह भारहीन हो जाता है. पदार्थ या व्यक्ति का भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न वजन का होना अपेक्षाकृत ही है.

दूसरा उदाहरण और लीजिए-एक आदमी लिफ्ट में खड़ा है. उसके हाथ में संतरा है. जैसे ही लिफ्ट नीचे उतरना शुरू करता है वह आदमी उस संतरे को गिराने के लिए हथेली को उल्टी कर देता है. परन्तु वह देखता है कि संतरा नीचे नहीं गिर रहा है और उसी की हथेली से चिपक रहा है तथा उसके हाथ पर दबाव भी पड़ रहा है. कारण यह है कि संतरा जिस गति से नीचे गिर रहा है उससे लिफ्ट के साथ नीचे जाने वाले आदमी की गति अधिक है. ऐसी स्थिति में वह संतरा नीचे गिर रहा है और नहीं भी. लिफ्ट के बाहर खड़े व्यक्ति की दृष्टि से तो वह नीचे गिर रहा है परन्तु लिफ्ट में खड़े मनुष्य की दृष्टि से नहीं.

आधुनिक विज्ञान इसी सापेक्षवाद के सिद्धांत (Theory of relativity) का उपयोग कर दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रहा है. सापेक्षवाद न केवल विज्ञान के क्षेत्र में बल्कि दार्शनिक, राजनैतिक आदि अन्य सब ही क्षेत्रों की उलझन भरी समस्याओं को सुलझाने के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है. अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० डा० आर्चा पी० एच० डी० अनेकांत की महत्ता व्यक्त करते हुए लिखते हैं :—The Anekant is an important principle of jain logic, not commonly asserted by the western or Hindu logician, which promises much for world place through metaphysical harmony.

इसी प्रकार जैन दर्शन के 'कर्मसिद्धांत' और विज्ञान की नवीन शाखा 'परामनोविज्ञान', अणु की असीम शक्ति का आविर्भाव करने वाले विज्ञान की अणु-भेदन प्रक्रिया और आत्मा की असीम शक्ति का आविर्भाव करने वाली भेद-विज्ञान की प्रक्रिया आदि गणित सिद्धांतों में निहित समता व सामञ्जस्य को देखकर उनकी देन के प्रति मस्तक आभार से झुक जाता है.

सारांश यह है कि जैनागमों में प्रणीत सिद्धांत इतने मौलिक एवं सत्य हैं कि विज्ञान के अभ्युदय से उन्हें किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचने वाला है, प्रत्युत् वे पहले से भी अधिक निखर उठने वाले हैं. तथा विज्ञान के माध्यम से वे विश्व के कोने-कोने में जन-साधारण तक पहुँचने वाले हैं.

विज्ञान-जगत् में अभी हाल ही की आत्मतत्त्वशोध से आविर्भूत आत्म-अस्तित्व की संभावनाएँ एवं उपलब्धियाँ विश्व के भविष्य की ओर शुभ संकेत हैं. विज्ञान की बहुमुखी प्रगति को देखते हुए यह दृढ़ व निश्चय के स्वर में कहा जा सकता है कि वह दिन दूर नहीं है जब आत्म-ज्ञान और विज्ञान के मध्य की खाई पट जायेगी और दोनों परस्पर पूरक व सहायक बन जायेंगे. विज्ञान का विकास उस समय विश्व को स्वर्ग बना देगा, जिस में अभाव, अभियोग तथा ईर्ष्या, द्वेष, वैयक्तिक स्वार्थ, शोषण आदि बुराइयाँ न होगी. मानव का आनंद भौतिक वस्तुओं पर आधारित न होकर प्रेम, सेवा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि मानवीय गुणों पर आधारित होगा. विज्ञान का विकास आध्यात्मिक क्षेत्र में होगा, इसका समर्थन करते हुए विश्व के महान् वैज्ञानिक डा० चार्ल्स स्टाइनमेज लिखते हैं:—महानतम[1] आविष्कार आत्मा के क्षेत्र में होंगे. एक दिन मानव-जाति को पुनः प्रतीत हो जायगा कि भौतिक वस्तुएँ आनंद नहीं देती और उनका उपयोग स्त्री पुरुषों को सृजनशील तथा शक्तिशाली बनाने में बहुत ही कम है. तब वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं को ईश्वर और प्रार्थना के अध्ययन की ओर उन्मुख करेंगे. जब वह दिन आयेगा, तब मानव जाति एक ही पीढ़ी में इतनी वैज्ञानिक उन्नति कर सकेगी जितनी आज की चार पीढ़ियाँ भी न कर पायेगी. आशय यह है भविष्य में आत्मज्ञान और विज्ञान के मध्य की भेद-रेखा मिटकर दोनों परस्पर घुल-मिल जायेंगे. वह दिन विश्व के लिए वरदान सिद्ध होगा.

१. ज्ञानोदयः अक्तूबर १९५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org